समृद्ध का आनंद और निर्धन का नसीब

प्रफुल्ल कोलख्यान

आज हिंदी का कथा संसार बहुविध वैविध्य से समृद्ध है। शिल्प और अंतर्वस्तु के स्तर पर काफी विकास भी हुआ है। कहानी आलोचना के केंद्र में है, लेकिन उससे अधिक संतोष की बात यह है कि कहानी पाठक की निगाह में है। आलोचना एक प्रकार से साहित्य के केंद्र-बिंदुओं की न सिर्फ तलाश करती है बल्कि केंद्र-बिंदुओं का निर्माण भी करती है। पाठकीयता का विस्तार साहित्य की परिधि का निर्माण करता है। यह सच है कि केंद्रीयता कुछ मामलों में रचना की संरचना में प्रवेश का पथ प्रशस्त करती है लेकिन इससे परिधि का महत्त्व कम नहीं हो जाता है। कहना न होगा कि केंद्र का होना चाहे जितना महत्त्वपूर्ण क्यों न हो वह रचना का रकबा तय नहीं कर सकता। रचना का रकबा तो परिधि से ही तय होता है। परिधि तय करती है, पाठकीयता। केंद्र और परिधि में तनाव का होना भी अस्वाभाविक नहीं है। केंद्र और परिधि में तनाव चाहे जितना भी हो, संवाद बने रहने पर रचना संसार का बड़ा हिस्सा अव्यवहार्य बन जाने से बचा रहता है। केंद्रीयता सत्ता का मूल चरित्र है। केंद्रीयता के चरित्र में बदलाव सत्ता के चरित्र को बदलता है। आलोचना चूँकि केंद्र बनाती है इसलिए स्वभावत: स्वनिर्मित केंद्र में कैद हो जाने के जोखिम भी उसके सामने कम नहीं होते हैं। केंद्र के कैद से बलपूर्वक बाहर निकलकर परिधि का जायजा लेना, बल्कि लेते रहना, आलोचना के लिए बहुत जरूरी होता है। आलोचना का काम ही विशेष नजर से देखना और दिखाना होता है; यह एक खतरनाक स्थिति तब हो जाती है जब आलोचना विशेष नजर से देखने के बदले सिर्फ 'विशेष-विशेष' को ही देखने की लत की शिकार बन जाती है। आलोचना की इस लत के कारण साहित्य की, कम-से-कम हिंदी साहित्य की, काफी क्षति हुई है। स्वाभाविक ही है कि आलोचना से लेखकों की हमेशा एक आम प्रकार की शिकायत बनी रहती है--- 'अंधी बनी रहने' की शिकायत। यह सच है कि औरों की तरह आलोचना की भी अपनी सीमा होती है। आलोचना जो कुछ देखती है, उन सबको अविकल रूप में प्रस्तुत करना न तो उसके लिए हमेशा संभव हो सकता है और न ही जरूरी। फिर भी, स्वीकार करना चाहिए कि देखे हुए के समग्र के कथन के असंभव होने की स्वाभाविकता आलोचना को शरारतपूर्ण चुप्पी की खुली छूट नहीं देती है। जीवन का अनुभव बताता है कि पर्यटन के नक्शे पर 'लाल रंग' से चिह्नित 'लाल घेरे' के बाहर भी देखने लायक बहुत कुछ ऐसा है,

जिसके बारे में पता करते रहना होता है--- चाहे इसमें कितना ही जोखिम क्यों न हो। रघुवीर सहाय के संकेत का स्मरण करते हुए कहा जा सकता है कि शासक का आसन जितनी जगह घेरता है, शासन का क्षेत्र उतना ही बड़ा नहीं होता है। और हाँ, शुरू में ही यह निवेदन कर देना जरूरी है कि हरीचरन प्रकाश जी के इस कथा संग्रह के अलावे मैंने न तो उनका कुछ ठीक से पढ़ा है और न व्यक्तिगत रूप से उन्हें जानता ही हूँ, इसलिए इन कथाओं के पाठ का परिपाठ मेरे सामने बहुत स्पष्ट नहीं होने की सीमा है। फिर भी, इस कथा संग्रह पर लिखने का मेरे पास अपने कारण हैं और ये कारण कहानी के भीतर ही हैं।

हरीचरन प्रकाश के इस संग्रह में महापुरूष की मृत्यु, सौभाग्याकांक्षिणी गुडल्ली और विनीत एस.एस. बाजपेयी, उत्तम पुरुष की निवृत्ति, उपकथा का अंत, तस्वीर का तिलक, नाले का तट एवं डेढ़ टाँग की सवारी शीर्षक से कुल सात कहानियाँ शामिल हैं। कुछ कहानियों पर चर्चा करना लाजिमी हैः

महापुरुष की मृत्यु

काल घटनाओं की अटूट श्रृंखला है। घटनाओं की श्रृँखला अटूट होती है इसलिए काल एक अखंड इकाई होता है। बोध के स्तर पर, घटनाओं की इस श्रृँखला को टूट से बचाते हुए काल को भूत, वर्तमान और भविष्य में विभाजित कर दखने की अपनी सुविधा है। इस सुविधा से बंचित हुए बिना भी कहा जा सकता है कि वर्तमान भूत का भविष्य और भविष्य का भूत होता है। इस नजरिये से देखें तो, नायक वर्त्तमान में बनते और इतिहास में पलते हैं। यह एक ऐसा दौर है जिसका वर्त्तमान किसी नायक के बनने का साक्षी नहीं हो पा रहा है और जिसके इतिहास को मृत घोषित किया जा रहा है। इतिहास मरा नहीं करता है, हाँ मरा हुआ घोषित कर उसे मारने की असंभव 'पर-क्रिया' को निरापद बनाने की कोशिश जरूर की जाती रही है। इस कहानी में समाचारवाचक के आलंबन से हमारे समय और 'महापुरुषों' के बीच बने रिश्तों की विद्रूपता सामने आई है। औपचारिकताओं के बाहर 'महापुरुष की मृत्यु' से दुख नहीं पहुँचने की स्थिति सार्वजनिक और वैयित्तक की सहजीविता में उत्पन्न व्यवधान को रेखांकित करती है। सामाजिक बहिरंग और वैयित्तक अंतरंग में उत्पन्न संघाती प्रक्रिया इतनी मारक होती है कि व्यक्ति अपने प्रत्यक्ष और परोक्ष मनोभाव[1] में कोई सामंजस्य ही नहीं बैठा पाता है। प्रत्यक्ष और परोक्ष मनोभाव का असमंजस[2] एक ओर व्यक्तित्व के विघटन का और दूसरी ओर समाज के भीड़ में बदलने का कारण बन जाता है। सभ्यता के संकट का मुकाबला तो दूर की कौड़ी, जीवन के प्राथमिक संकट का मुकाबला न वैयक्तिक स्तर पर संभव रह जाता है और न सामाजिक स्तर पर ही संभव हो पाता है। वे सारी स्थितियाँ जो खुद अदृश्य रहकर दृश्य का विधान करती हैं निष्प्रभव बन जाती हैं। कहना न होगा कि अदृश्य के इस तरह बुझने का असर अंततः दृश्य को भी धुँधला बना देता है--

> --''अभी-अभी समाचार मिला है कि महापुरुष का देहावसान हो गया है।'' कहते-कहते उनका चेहरा मुसकुराहटों से बिंध गया, फिर एक कातर हँसी का नि:शब्द विस्फोट हुआ। उसी क्षण उन्हें आस-पास और गहरी गतिविधियों का एहसास हुआ। वे अपने कानों से सपना को बाकी समाचार पढ़ते सुन रहे थे। उन्हें पता चल गया कि वे कैमरे की जद से बाहर हो गए हैं। कमरे में जो कुछ भी था, जो हमेशा दर्शकों की निगाहों से ओझल रहता था, केमरा, फर्नीचर, कालीन और परदे जिन पर उनकी भौंचक्की निगाहें जा रही थीं एक-एक कर बुझते जा रहे थे।

सामान्यत: मुस्कान से चेहरा खिलता है; असामान्य अवस्था में बिंध भी जाता है! समाचारवाचक के सार्वजनिक चेहरे पर उसके निजी चेहरे का हमला इतना तेज और तीखा होता है कि उसके चेहरे का सार्वजनिक पक्ष निजी पक्ष की मुस्कुराहटों से बिंध जाता है। सामाचारवाचक को फोकस से बाहर किया जा सकता है, लेकिन समाचारग्राहक को! यह पूरी कहानी 'महापुरुषों' की मृत्यु के पश्चात सामान्य रूप से उच्चरित होनेवाले 'सद्भाववाही महान शब्दों' की अर्थहीनता को ही नहीं हीनार्थता को भी सामने लाती है। इतना कर लेने से कहानी सफल तो हो जाती है लेकिन सार्थक होने के लिए कहानी को अर्थहीनता और हीनार्थता के पार को भी दृश्यगत करना जरूरी होता है। इसके बावजूद कहानी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हमारे समय का बीज शब्द 'सफलता' है, सार्थकता नहीं। जिसके साथ 'अर्थ' न जुड़ा हो उसे सार्थक मानना समय के व्याकरण के विरुद्ध है!

सौभाग्याकांक्षिणी गुडल्ली और विनीत एस एस.बाजपेयी

इधर पारंपरिक पारिवार की जीवन-वृत्ति के स्वाभाविक प्रसंग की जटिलताओं के रचनात्मक बर्ताव का स्पेस साहित्य में निरंतर छीजता जा रहा है। व्यक्ति प्रसंग आते हैं, उनके द्वंद्व आते हैं, यौनाक्रांत संदर्भ आते हैं, लेकिन परिवार की पृष्ठभूमि का कोई सामान्य टुकड़ा भी बिरल होता जा रहा है। आज के जीवन में स्थिति से अधिक प्रतीति का महत्त्व है। सामान्यत: वस्तु या बिंब से छाया या प्रतिबिंब मुक्त नहीं होता है। हमारे अनुभव में यह बात आती है कि आज 'हार्ड' से अधिक 'साफ्ट' का महत्त्व है; और 'हार्ड' का जो महत्त्व है वह 'साफ्ट' तक पहुँच बनाने में सहायक होने के कारण ही है। आज जीवन में आभासों की स्वीकार्यता बढ़ी है।[3] इसी का एक नतीजा यह है कि कन्या के शारीरिक सौष्ठव और दहेज की शर्त्तों में गुणात्मक बदलाव आ रहा है। कहा जाता है कि धन हर कमजोरी को ढक लेता है, कन्या के शारीरिक सौष्ठव की कमी को दहेज में मिलनेवाला धन ढक सकता है। लेकिन कठिनाई यह कि धन का स्वभाव वैसे ही बहुत चंचल होता है और दहेज में प्राप्त धन! वह तो 'तातल सैकत बारिबिंदु' की तरह होता है। इस धन के उड़ते ही कन्या के 'शारीरिक सौष्ठव की कमी' नंगी हो जाती है। 'सौभाग्याकांक्षिणी गुडल्ली और विनीत एस एस. बाजपेयी' एक नौकरी-पेशा मध्यवर्गीय बाप की मन:स्थिति को सामने लाती है, लेकिन नयी हवा में साँस लेने का अभ्यास करनेवाला कन्या-मन का कोई पता ही नहीं चलता है; हालाँकि उसका मिजाज थोड़ा-सा सामने आता है। कुढ़ते हुए पीड़ित और 'विनीत एस एस. बाजपेयी' तो प्रमुखता से दिख जाते हैं लेकिन 'सौभाग्याकांक्षिणी गुडल्ली'!

> 'सुधाकर बाबू 'वधू चाहिए' के इश्तहार पढ़-पढ़कर क्षुब्ध होते थे। हर वर को चाहिए त्रितापहारिणी लंबी, सुंदर और गोरी वधू। कहाँ से मिलेंगी पामरो तुम सबको अहर्निश आनंददायिनी अनंगप्रियाएँ इस स्वर्गादपि गरीयसी भारतभूमि में जो भरी हुई है तुम्हारे और तुम्हारे बाप जैसे करोड़ों लंबे-मझोले-नाटे, गोरे-सांवले-काले सुंदर सामान्य असुंदर मर्दों और गुलाब तथा गोभी के फूल के बीच गिनी जा सकनेवाली अनगिनत पुष्प प्रजातियों की तरह किस्म-किस्म की रंग-ओ-बू वाली तुम्हारी महतारी-बहनों से। सालो औरत के पेट से पैदा होती है असंख्य रूपधारी सृष्टि या लक्स इंटरनेशनल की टिकिया!'

इसी से जुड़ा हुआ यह पहलू भी है---

''फिर इसके बाद दरख्वास्तें पड़ने लगीं कि वह इसलिए लोन की फाइलें स्वीकृत नहीं करते हैं क्योंकि वह पच्चीस प्रतिशत कमीशन चाहते हैं। धीरे-धीरे बात छन-छनकर उनकी समझ में आई कि प्रदेश सरकार देश में अव्वल आना चाहती है, पात्रता आर नो पात्रता। सुधाकर बाबू ढीले पड़ गए और आजिज आकर उन्होंने धड़ाधड़ स्वीकृतियाँ देनी शुरू कीं, लगभग बदले की तरह और यह भी सोचा कि चलो मनुष्य पर अविश्वास करने की बजाय ईश्वर पर विश्वास किया जाए। इस तरह से प्रदेश को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। फिर सुधाकर बाबू के गले में फंदा क्यूँकर पड़ा। बात यह थी कि शासन ने पात्र और अपात्र का भेद तो बताया था किंतु स्थानीय प्रतिभा ने कुछ अदृश्य पात्रों का भी सृजन किया था। इन्हीं अदृश्य पात्रों में से कुछ को सुधाकर बाबू की ब्रांच से लोनिंग हो गई थी। पहले इसकी शिकायत हुई, फिर देश में इमरजेंसी लगी। इमरजेंसी को ही शोभा दे, ऐसी तत्परता के साथ की गई प्रारंभिक जाँच के बाद सुधाकर बाबू औरों के साथ निलंबित हुये तो उन्हें अपने और ईश्वर के बीच के आरामदेह संबंधों के बारे में पहली बार कुछ संदेह हुआ।''

सरकारी योजनाओं का सत्यानाशी चक्र किस तरह तैयार होता है, और कई बार न चाहते हुए भी उसमें किस तरह शामिल हो जाना पड़ता है, बाजार, व्यवस्था और मध्यवर्गीय पारिवार के भौतिक अस्तित्व के उलझावों का वर्णन करते हुए कहानी आगे बढ़ती है।

उपकथा का अंत

समग्र भारतीय जनतंत्र के ऊपर यह बात चाहे जितनी लागू होती हो, हिंदी पट्टी की राजनीतिक प्रक्रियाओं के अंतर्गत जनतंत्र का हाल बहुत बुरा है। विकास कार्यक्रम हो या सुधार कार्यक्रम उसको अपेक्षित ढंग से लागू करने का कोई उपाय ही नहीं बचा है। राजनीति में परस्पर विरोधी दिखनेवाले 'धरती पुत्र' और 'प्रगति पुरुष' एक ही होते हैं; दोनों की 'विकास योजनाओं' और जनतंत्र से प्राप्त होनेवाली 'शक्तियों' को जोड़ने के लिए सहतू महराजों की सेवाओं की निर्विकल्प जरूरत होती है---

'कुछ दिन उनके कैरियर में थोड़ा ठहराव आया। फिर जनतंत्र की अपेक्षाओं के कारण उन्होंने सरकार के विकास कार्यक्रमों में सहयोग देने का विचार बनाया। इस विचार से उनके इलाके में एक नये युग का आरंभ हुआ। विकास सूचक हर सड़क-पुल और नाली में उन्होंने हाथ लगाया। इसकी दो विधियाँ थीं। एक यह कि या तो वह स्वयं ठेका हासिल करें या उनकी छत्रछाया में ठेकेदार वाजिब शुल्क देकर ठेकेदारी करें। दायें और बायें, दोनों हाथों से इन परस्पर पूरक विधियों को अमल में लाने के लिए जरूरी था कि वे राजनीति भी करें। आज के धरतीपुत्र मुख्यमंत्री उस समय विपक्ष के नेता थे। किंतु मार्के की बात यह थी कि तत्कालीन मुख्यमंत्री जिनके नाम के पहले प्रगतिपुरुष जोड़ा जाता था, से उनके समीकरण बिल्कुल फिट थे। कहा जाता था कि जितना ख्याल मुख्यमंत्री जी विपक्ष के नेता जी का करते हैं उतना खुद अपनी कैबिनेट के मिनिस्टरों का नहीं करते। विपक्ष के नेताजी को राजधानी में एक बाहुबली की जरूरत थी और सहतू महराज को ऐसा नेता बहुत पसंद आया जो उन से दिन-दहाड़े और सप्रेम मिलता था।'

प्रूफ की असावधानियों के कारण कहीं-कहीं अखरनेवाली त्रुटि रह गई है--- जैसे 'नाले का तट' का अभय शंकर राय अजय शंकर राय हो गया है। पर्यावरण, प्रदूषण, सांप्रदायिकता, जातिवाद, अफसरशाही, दफ्तरशाही, पुलिस, राजनीति, पत्रकारिता, परिवार, रोजगार, अंधविश्वास जैसे विषयों को इन कहानियों में प्रस्तुत किया गया है। खेलती हुई भाषा का व्यवहार इन कहानियों का आकर्षण बढ़ाता है। पाठ के स्तर पर संग्रह में शामिल सभी कहानियाँ अपनी कथा-वस्तु और वर्णानात्मकता की भाषिक छटाओं की दृष्टि से सफल है। यह सच है कि कहानी या कि साहित्य सिर्फ भाषिक रवैया नहीं है तथापि इन कहानियों का भाषिक बर्ताव अतिरिक्त रूप से ध्यान दिये जाने लायक है। तब इतना जरूर है कि संपादन के स्तर पर थोड़ी-सी सावधानी बरतने पर इस बर्ताव में और निखार की गुंजाइश थी।

कहानी का शिल्प और संसार बदला है--- संस्कार भी। काहानी का शिल्प और संसार चाहे जितना बदल जाए, कहानी को कहानी तो रहना ही होगा। आदमी की दुनिया चाहे जितनी बदल जाए, आदमी को आदमी तो रहना ही होगा! इधर कहानी के शिल्प से 'स्वतंत्र' होकर कहानी को संभव करने की कोशिश की जा रही है। इस कोशिश में कुछ अच्छे नतीजे भी आये हैं, लेकिन कुल मिलाकर इससे कहानी का दायरा उथला जरूर हुआ है। शायद इसलिए कि कहानी के शिल्प से मुक्त होने के लिए कहानी के शिल्प पर जितना और जैसा अधिकार होना चाहिए उतना और वैसा अधिकार सध नहीं पाया है। बहुत पहले नामवर सिंह ने कहा था कि 'कहानी-शिल्प के भी मालिक वही हैं जो उसके गुलाम हैं। क्या साहित्य, क्या जीवन, सभी क्षेत्रों में स्वाधीन होने की सामर्थ्य उन्हीं के लिए संभव है जिसमें अधीन रहने की क्षमता है।'[4] जीवन के अन्य क्षेत्र में गुलामी का बाजार गर्म हो रहा है। विडंबना यह है कि जो शक्तियाँ जीवन के अन्य क्षेत्र में गुलामी का बाजार गर्म करने में लगी हैं, उन्हीं की सांस्कृतिक परियोजना के अंतर्गत विधाओं की आत्ममायार्दा को खंडित करने के उद्यम भी हो रहे हैं। कहानी के दायरे में घातक आत्म-संकोच का ही नतीजा है कि कहानियों में जीवन-स्थिति या व्यक्ति की मन:स्थितियों की ओट में कहानी का मुख्य कथ्य सामाजिक संबंधों से छिटककर व्यक्ति के निजी संदर्भों से सीमित होकर रह गया है। यह नहीं कि कहानी को उधर देखना ही नहीं चाहिए, तब यह जरूर है कि सिर्फ 'उधर ही देखते रहना' कहानी की ताकत के क्षरण का ही सूचक है। ऐसे कथा वातावरण में हरीचरन प्रकाश के कथा संग्रह 'उपकथा का अंत' में संकलित कहानियाँ कथा पाठकों को आकृष्ट करती है। इस आकर्षण के महत्त्व को समझते हुए इन कहानियों पर विचार करना अपेक्षित है।

हरीचरन प्रकाश की कहानियों में सामाजिक स्थितियों की आत्म-विसंगतियों, विडंबनाओं, दुश्चक्र के सामने बिना किसी संघर्ष के आत्म-समर्पण का मिजाज आम है। यह सवाल उठ सकता है कि क्या कहानी के पात्रों के माध्यम से उन सामाजिक, कम-से-कम मानसिक, संघर्षों को भी जगह नहीं मिलनी चाहिए जिसकी जरूरत और स्थिति सामाजिक जीवंतता का लक्षण है। स्थिति चाहे जितनी भी विकट क्यों न हो, विभिन्न संस्तरों पर सामाजिक संघर्ष अवश्य ही जारी रहता है। हाँ, कई बार यह संघर्ष सतह के नीचे और प्रच्छन्न होता है। साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन प्रच्छन्न या सतह के नीचे चल रहे ऐसे संघर्षों को पहचानना, प्रच्छन्नता को दृश्य बनाना और सतह के ऊपर लाना भी होता है। जो साहित्य अपने इस प्रयोजन के महत्त्व को ठीक से समझकर रचनात्मक चुनौतियों का सामना नहीं करता है, वह अंतत: यथास्थितिवाद का शिकार होने या उसे मजबूत करने से बच जाये तो भी यथास्थिति को सामने लाने से अधिक कुछ कर नहीं पाता है--- यथार्थ की स्थिति को तो पकड़ पाता है लेकिन यथार्थ की गति उसकी पहुँच से बाहर ही होती है। रचना के भीतर स्थिति में गति और गति में स्थिति का संधान और उनके गुणनफलों को हासिल करना तो बहुत दूर की बात है। ध्यान में रखना जरूरी है कि

यथास्थिति और यथार्थ एक अपर के अनिवार्य पर्याय नहीं होते हैं। आत्म-विसंगतियों और विडंबनाओं के माध्यम से कुछ चुटीली उक्तियों, कुछ मार्मिक प्रसंगों, मनोरंजक क्षणों आदि का रचनात्मक विनियोग भले हो जाये और प्रथम दृष्टि में रचना पाठकों को भले ही आकृष्ट कर ले, लेकिन उससे आगे बढ़ पाना उसके लिए संभव नहीं होता है। यह सच है कि रचनात्मकता के महत्त्व को प्रभाववादी आधार पर ही नहीं तय किया जा सकता है, लेकिन यह भी सच है कि रचना के समग्र प्रभाव को 'पराभववादी' नजरिया क्षतिग्रस्त ही करता है। साहित्य में चुटीली उक्ति, मार्मिक प्रसंग, मनोरंजक क्षण आदि अपने पाठकों को पाठ से जोड़ने के उपकरण और अलंकरण हैं, पाठ का अंत:करण नहीं। उपकरण और अलंकरण को ही अंत:करण मान लेना किसी तर्क और तरह से उचित नहीं हो सकता है। रचना अपनी सार्थकता में इस पार के 'मधु और प्रिय' की दृश्यता को ही नहीं 'उस पार' के 'मधु-पर्क' की दृश्यमानता को भी प्रखर और प्रांजल बनाती है। आवाज के पार जहाँ संगीत होता है, वहीं कहीं दृश्य के पार का अदृश्य दृष्टिगोचर होता है। दृश्य में अदृश्य का और अदृश्य में दृश्य का संधान और कई बार संस्थापन भी रचना को महत्त्वपूर्ण बनाता है। यही संधान और संस्थापन सृजन के आत्म-संघर्ष की मनोभूमि को 'मैनाक' की तरह का उभार देता है। 'मैनाक', जिसके सिर पर पैर रखकर साहित्य सभ्यता की काल-बाध्यता के महासागर को लाँघकर ऐसे अशोकवन में शोकमग्न संबंधों की सीता के संधान के लिए उछाल लेता है जहाँ काल सिर्फ काल होता है, भूत-वर्त्तमान-भविष्य के विभाजक विशेषणों से मुक्त सिर्फ काल। कई बार साहित्य इसमें सफल होता है कई बार 'सुरसाओं' का ग्रास भी बन जाता है। कहानी या कह लें साहित्य मात्र की सफलता का आधार पाठ के भीतर होता है जबकि सार्थकता और महत्ता का आधार पाठातीत होता है। कहना न होगा कि साहित्य में पाठ और पाठातीत एक दूसरे से पार्थक्य और अलगाव में नहीं हुआ करते हैं। सफल कहानी पाठ का आनंद देकर पाठक से भिन्न हो जाती है। सार्थक कहानी पाठ का आनंद देकर पाठक से अभिन्न हो जाती है तथा इस तरह पाठक की संवेदना और स्मृति का हिस्सा बना जाती है; हर पाठ के बाद सार्थक साहित्य अपने पाठक को भीतर से थोड़ा बदल देता है। समझा जा सकता है कि सफल कविता-कहानी 'भोगो और भूलो'[5] के भँवर से बाहर नहीं निकल पाती है लेकिन सार्थक कविता-कहानी तिनके की तरह ही सही मगर इस भँवर में फँसे लोगों का सहारा बनती है। साहित्य की सार्थकता और महत्ता का मूल-निवास उसके 'उपरांत' में होता है। कहना न होगा कि इस 'उपरांत' का रास्ता साहित्य से होकर जाता है। जिस रचना में इस 'उपरांत' तक जाने का रास्ता नहीं होता उसका पाठक पाठ के बाद तुरंत अपनी दुनिया में, अर्थात जहाँ से चला था वहीं, वापस हो जाता है। 'उपकथा का अंत' ऐसी ही कहानियों का संसार लेकर आता है। फिर इनका महत्त्व क्या है! महत्त्व यह है कि इस तरह की कहानियाँ पाठकीय-वृत्ति को क्षयशीलता से बचाये रखती है, पाठकीय-वृत्ति का संपोषण करती है। एक कठिन रचानात्मक समय में जब पाठकीय-वृत्ति विभिन्न कारणों से क्षरणशीलता के भयानक दौर से गुजर रही है, ऐसी कहानियों के महत्त्व को समझना जरूरी है। इन कहानियों को पढ़ा जाना चाहिए और देखना चाहिए कि किस तरह कोई कहानी सफलता के सोपान पर आरूढ़ होने के बाद भी सार्थकता हासिल करने से रह जाती है।

संदर्भः

1 Public & Private Face
2 वैसे यह असमंजस अनुल्लंघ्य दरार की तरह फैल रहा है।
3 इस तरह के संकेत मिल रहे हैं कि अब सक्षम, समृद्ध और संपन्न परिवारों में पति-पत्नी एक विस्तर तो क्या एक कमरे में भी नहीं सोना चाहते हैं। किसी की भौतिक उपस्थिति से आभासों का ऐकांतिक संग

मिलने में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है! Virtual का Actual से अधिक विश्वसनीय और स्वीकार्य हो जाना मनावीय संबंधों की अभूतपूर्व विच्युत्ति के साथ सभ्यता को तहस-नहस करने पर आमादा है। परिवार खतरे में है--- विवाह विच्छेद की घटनाओं की दर में चिंताजनक वृद्धि एक पक्ष है तो विवाह विमुखता दूसरा पक्ष है। विडंबना यह है कि न तो Virtual को Actual बनाया जा सकता है और न Actual को ही Virtual बनाया जा सकता है।

4 नामवर सिंह: नयी कहानी सफलता और सार्थकता: कहानी: नयी कहानी: लोकभारती प्रकाशन, 1966

5 Use and Throw